काव्य खंड

बहादुरशाह ज़फ़र

लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दयार में
किसकी बनी है आलमे-नापायदार में
बुलबुल को बागबाँ से न सय्याद से गिला
किस्मत में कैद लिखी थी, फ़सले बहार में
इन हसरतों से कह दो कहीं और जा बसें
इतनी जगह कहाँ है दिले-दागदार में
इक शाखे-गुल पे बैठ के बुलबुल है शादमाँ
काँटे बिछा दिए हैं दिले-लालहज़ार में
उम्रे-दराज़ माँग के लाए थे चार दिन
दो आरज़ू में कट गए दो इंतज़ार में
दिन ज़िंदगी के खत्म हुए शाम हो गई
फैला के पाँव सोएँगे कुंजे-मज़ार में
कितना है बदनसीब ज़फ़र दफ़्न के लिए
दो गज़ ज़मीन भी न मिली कूए-यार में

(1857 के 150 वर्ष होने पर)

12070CH01

हरिवंश राय बच्चन 1

जन्म : *सन् 1907, इलाहाबाद*

प्रमुख रचनाएँ : *मधुशाला* (1935), *मधुबाला* (1938), *मधुकलश* (1938), *निशा निमंत्रण, एकांत संगीत, आकुल-अंतर, मिलनयामिनी, सतरंगिणी, आरती और अंगारे, नए पुराने झरोखे, टूटी-फूटी कड़ियाँ* (काव्य संग्रह); *क्या भूलूँ क्या याद करूँ, नीड़ का निर्माण फिर, बसेरे से दूर, दशद्वार से सोपान तक* (आत्मकथा चार खंड); *हैमलेट, जनगीता, मैकबेथ* (अनुवाद); *प्रवासी की डायरी* (डायरी)

उनका पूरा वाङ्मय 'बच्चन ग्रंथावली' के नाम से दस खंडों में प्रकाशित।

निधन : *सन् 2003, मुंबई में*

पूर्व चलने के बटोही बाट की पहचान कर ले

1942-1952 तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापक, आकाशवाणी के साहित्यिक कार्यक्रमों से संबद्ध, फिर विदेश मंत्रालय में हिंदी विशेषज्ञ रहे। दोनों महायुद्धों के बीच मध्यवर्ग के विक्षुब्ध, विकल मन को बच्चन ने वाणी का वरदान दिया। उन्होंने छायावाद की लाक्षणिक वक्रता के बजाय सीधी-सादी जीवंत भाषा और संवेदनसिक्त गेय शैली में अपनी बात कही। व्यक्तिगत जीवन में घटी घटनाओं की सहज अनुभूति की ईमानदार अभिव्यक्ति बच्चन के यहाँ कविता बनकर प्रकट हुई। यह विशेषता हिंदी काव्य संसार में उनकी विलक्षण लोकप्रियता का मूल आधार है।

मध्ययुगीन फ़ारसी के कवि उमर खय्याम का मस्तानापन हरिवंश राय बच्चन की प्रारंभिक कविताओं विशेषकर मधुशाला में एक अद्‌भुत अर्थ-विस्तार पाता है—जीवन एक तरह का मधुकलश है, दुनिया मधुशाला है, कल्पना साकी और कविता वह प्याला जिसमें ढालकर जीवन पाठक को पिलाया जाता है। कविता का एक घूँट जीवन का एक घूँट है। पूरी तन्मयता से जीवन का घूँट भरें, कड़वा-खट्टा भी सहज भाव से स्वीकार करें तो अंततः एक

सूफ़ियाना-सी बेखयाली मन पर छाएगी, एक के बहाने सारी दुनिया से इश्क हो जाएगा, और तेरा-मेरा के समस्त झगड़े काफ़ूर हो जाएँगे। इसे बच्चन का ***हालावादी*** *दर्शन कहते हैं।*

यह बात ध्यान देने योग्य है कि उनकी युगबोध-संबंधी कविताएँ जो बाद में लिखी गईं, उनका मूल्यांकन अभी तक कम ही हो पाया है। बच्चन का कवि-रूप सबसे विख्यात है, पर उन्होंने कहानी, नाटक, डायरी आदि के साथ बेहतरीन आत्मकथा भी लिखी है–जो ईमानदार आत्मस्वीकृति और प्रांजल शैली के कारण निरंतर पठनीय बनी हुई है।

यहाँ उनकी कविता ***आत्मपरिचय*** *तथा गीत संग्रह* ***निशा निमंत्रण*** *का एक गीत दिया जा रहा है। अपने को जानना दुनिया को जानने से ज्यादा कठिन है। समाज से व्यक्ति का नाता खट्टा-मीठा तो होता ही है।* ***जगजीवन*** *से पूरी तरह निरपेक्ष रहना संभव नहीं! दुनिया अपने व्यंग्य-बाण और शासन-प्रशासन से चाहे जितना कष्ट दे, पर दुनिया से कटकर मनुष्य रह भी नहीं पाता। क्योंकि उसकी अपनी अस्मिता, अपनी पहचान का उत्स, उसका परिवेश ही उसकी दुनिया है– अपना परिचय देते हुए वह लगातार दुनिया से अपने द्विधात्मक और द्वंद्वात्मक संबंधों का मर्म ही उद्घाटित करता चलता है और पूरी कविता का सारांश एक पंक्ति में यह बनता है कि दुनिया से मेरा संबंध प्रीतिकलह का है, मेरा जीवन विरुद्धों का सामंजस्य है–* ***उन्मादों में अवसाद, रोदन में राग, शीतल वाणी में आग, विरुद्धों का विरोधाभासमूलक*** *सामंजस्य साधते-साधते ही वह बेखुदी, वह मस्ती, वह दीवानगी व्यक्तित्व में उतर आई है कि* ***दुनिया में हूँ, दुनिया का तलबगार नहीं हूँ / बाज़ार से गुज़रा हूँ खरीदार नहीं हूँ*** *– जैसा कुछ कहने का ठस्सा पैदा हुआ है। यह ठस्सा ही छायावादोत्तर गीतिकाव्य का प्राण है। किसी असंभव आदर्श (यूटोपिया) की तलाश में सारी दुनियादारी ठुकराकर उस भाव से दुनिया से इन्हें कोई वास्ता नहीं है। प्रीति-कलह का यही वितान और विरोधाभास का यह विग्रह इन्हें दूर टिमटिमाते तारे की अबूझ रहस्यात्मकता से लहालोट रखता है।* ***निशा निमंत्रण*** *से उद्धृत गीत में प्रकृति के दैनिक परिवर्तनशीलता के संदर्भ में प्राणि-वर्ग (विशेषकर मनुष्य) के धड़कते हृदय को सुनने की काव्यात्मक कोशिश है। बहुत ही सरल सर्वानुभूत बिंबों के ज़रिये किसी अगोचर सत्य की रूहानी छुअन महसूस करा देना बच्चन की जो अलग विशेषता है, यह गीत उसका एक बेहतर नमूना है। किसी प्रिय आलंबन या विषय से भावी साक्षात्कार का आश्वासन ही हमारे प्रयास के पगों की गति में चंचल तेज़ी भर सकता है– अन्यथा हम शिथिलता और फिर जड़ता को प्राप्त होने के अभिशिप्त हो जाते हैं। गीत इस बड़े सत्य के साथ समय के गुज़रते जाने के एहसास में लक्ष्य-प्राप्ति के लिए कुछ कर गुज़रने का जज़्बा भी लिए हुए है।*

आत्मपरिचय
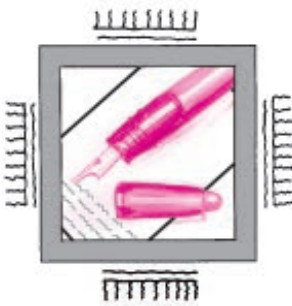
मैं जग-जीवन का भार लिए फिरता हूँ,
फिर भी जीवन में प्यार लिए फिरता हूँ;
कर दिया किसी ने झंकृत जिनको छूकर
मैं साँसों के दो तार लिए फिरता हूँ!

मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूँ,
मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ,
जग पूछ रहा उनको, जो जग की गाते,
मैं अपने मन का गान किया करता हूँ!

मैं निज उर के उद्‌गार लिए फिरता हूँ,
मैं निज उर के उपहार लिए फिरता हूँ;
है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता
मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूँ!

मैं जला हृदय में अग्नि, दहा करता हूँ,
सुख-दुख दोनों में मग्न रहा करता हूँ;
जग भव-सागर तरने को नाव बनाए,
मैं भव मौजों पर मस्त बहा करता हूँ!

मैं यौवन का उन्माद लिए फिरता हूँ,
उन्मादों में अवसाद लिए फिरता हूँ,
जो मुझको बाहर हँसा, रुलाती भीतर,
मैं, हाय, किसी की याद लिए फिरता हूँ!
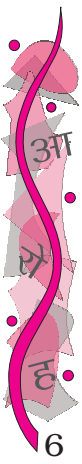
कर यत्न मिटे सब, सत्य किसी ने जाना?
नादान वहीं है, हाय, जहाँ पर दाना!
फिर मूढ़ न क्या जग, जो इस पर भी सीखे?
मैं सीख रहा हूँ, सीखा ज्ञान भुलाना!

मैं और, और जग और, कहाँ का नाता,
मैं बना-बना कितने जग रोज़ मिटाता;
जग जिस पृथ्वी पर जोड़ा करता वैभव,
मैं प्रति पग से उस पृथ्वी को ठुकराता!

मैं निज रोदन में राग लिए फिरता हूँ,
शीतल वाणी में आग लिए फिरता हूँ,
हों जिस पर भूपों के प्रासाद निछावर,
मैं वह खंडहर का भाग लिए फिरता हूँ।

मैं रोया, इसको तुम कहते हो गाना,
मैं फूट पड़ा, तुम कहते, छंद बनाना;
क्यों कवि कहकर संसार मुझे अपनाए,
मैं दुनिया का हूँ एक नया दीवाना!

मैं दीवानों का वेश लिए फिरता हूँ,
मैं मादकता निःशेष लिए फिरता हूँ;
जिसको सुनकर जग झूम, झुके, लहराए,
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूँ!

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!

हो जाए न पथ में रात कहीं,
मंजिल भी तो है दूर नहीं–
यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी-जल्दी चलता है!
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!

बच्चे प्रत्याशा में होंगे,
नीड़ों से झाँक रहे होंगे–
यह ध्यान परों में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है!
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!

मुझसे मिलने को कौन विकल?
मैं होऊँ किसके हित चंचल?
यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर में विह्वलता है!
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!

अभ्यास

कविता के साथ

1. कविता एक ओर जग-जीवन का भार लिए घूमने की बात करती है और दूसरी ओर ***मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ***– विपरीत से लगते इन कथनों का क्या आशय है?
2. ***जहाँ पर दाना रहते हैं, वहीं नादान भी होते हैं***– कवि ने ऐसा क्यों कहा होगा?
3. ***मैं और, और जग और कहाँ का नाता***– पंक्ति में ***और*** शब्द की विशेषता बताइए।
4. ***शीतल वाणी में आग***– के होने का क्या अभिप्राय है?
5. बच्चे किस बात की आशा में नीड़ों से झाँक रहे होंगे?
6. ***दिन जल्दी-जल्दी ढलता है***–की आवृत्ति से कविता की किस विशेषता का पता चलता है?

कविता के आसपास

संसार में कष्टों को सहते हुए भी खुशी और मस्ती का माहौल कैसे पैदा किया जा सकता है?

आपसदारी

* जयशंकर प्रसाद की ***आत्मकथ्य*** कविता की कुछ पंक्तियाँ दी जा रही हैं। क्या पाठ में दी गई ***आत्मपरिचय*** कविता से इस कविता का आपको कोई संबंध दिखाई देता है? चर्चा करें।

आत्मकथ्य

मधुप गुन-गुना कर कह जाता कौन कहानी यह अपनी,

* * * *

उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पंथा की।
सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यों मेरी कंथा की?
छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ?
सुनकर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्म-कथा?
अभी समय भी नहीं, थकी सोई है मेरी मौन व्यथा।

– जयशंकर प्रसाद